समक्ष पी. के. जैन न्यायमूर्ति

वेदपाल -याचिकाकर्ता।

बनाम

हरियाणा राज्य और अन्य-उत्तरदाता।

1996 का सीआरएल एम. सं. 16532-एम

14 फ़रवरी 1997

भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 72 & 161—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 433-ए-संविधान के अनुच्छेद 161 के तहत राज्यपाल द्वारा जारी किए गए निर्देश-ऐसे निर्देश चाहे वे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 433-ए के तहत नियंत्रित हों। अभिनिर्धारित नहीं।

(सीआरएल। एम. सं. 578-एमः96 एच. डी. सिंफ बनाम हरियाणा राज्य और अन्य ने 5 अगस्त, 1996 को निर्णय लिया।)

अभिनिर्धारित किया गया कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 433-ए के प्रावधानों के बावजूद राष्ट्रपति और राज्यपाल भारत के संविधान के अनुच्छेद 72 और 161 के तहत परिवर्तन, छूट और छूट की शक्तियों का प्रयोग करना जारी रखते हैं। चूंकि यह "अछूत" और "अप्राप्य" है, इसलिए संवैधानिक शक्ति नियमित विधायी प्रक्रियाओं के उतार-चढ़ाव से अछूती है।। इसलिए, जय सिंह बनाम हरियाणा राज्य और अन्य मामलों में इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा की गई टिप्पणियां मारू राम बनाम भारत संघ मामले में शीर्ष न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून को ध्यान में रखते हुए सही नहीं मानते हैं।

(पैरा 9 &10)

पी सी चौधरी अधिवक्ता, याचिकाकर्ता के लिए।
शैलेंद्र सिंह, डी. ए. जी. हरियाणा, उत्तरदाता के लिए

फैसला

पी. के. जैन न्यायमूर्ति.

(1)यह याचिका आपराधिक संहिता की खंड 482 (इसके बाद 'संहिता' के रूप में संदर्भित) के साथ पठित भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत दायर की गई है। 12 जुलाई, 1996 से याचिकाकर्ता के पास लंबित प्रकृति पूर्व रिहाई मामले पर विचार करने और निर्णय लेने के लिए प्रतिवादी संख्या 1 को उचित निर्देश जारी करने के लिए प्रक्रिया।

(2) याचिकाकर्ता को धारा 302/302/34 आई. पी. सी. के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया गया था और 9 फरवरी, 1987 के निर्णय/आदेश द्वारा आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी।14 अक्टूबर, 1996 को उन्हें निम्नलिखित सजा सुनाई गई हैः—

	वर्ष 0	महीनों	दिन।
(i) 14 सितंबर, 1986 से 8 सितंबर तक की परीक्षण अवधि के तहत फरवरी।1987		4	28
(29 फरवरी, 1987 से 14 अक्टूबर 1990 तक की सजा	9	8	1
कुलः	10	01	02
(iii) अर्जित माफीः	5	03	29

जेल के कैदी के रूप में याचिकाकर्ता का आचरण और व्यवहार अच्छा और संतोषजनक रहा है, जिसके लिए उसने छूट अर्जित की है।उन्होंने न तो कोई जेल अपराध किया और न ही उन्हें कभी अधिकारियों द्वारा दंडित किया गया।वह शांतिपूर्वक पैरोल और छुट्टी का आनंद लेते थे और हमेशा समय पर आत्मसमर्पण करते थे।4 फरवरी, 1993 के निर्देशों के अनुसार, आजीवन कारावास की सजा पाने वाले व्यक्ति को 10 साल की वास्तविक सजा भुगतनी होती है, जिसमें विचाराधीन अवधि और छूट सहित कुल 14 साल की सजा शामिल है।याचिका में कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने उक्त निर्देशों में निर्धारित आवश्यक शर्तों को पूरा किया है जो प्रकृति में संवैधानिक हैं।उनकी अपरिपक्व रिहाई का मामला प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा संसाधित **किया** गया था और प्रत्यर्थी संख्या **2** को दिनांक 12 मार्च, 1996 के पत्र के माध्यम से भेजा गया था- लेकिन प्रतिवादी द्वारा उन कारणों के लिए निर्णय नहीं लिया जा रहा है जो उन्हें सबसे अच्छी तरह से पता हैं।इसलिए यह याचिका दायर की गई है।

(3) उत्तरदाताओं ने अपने जवाब में ऊपर बताए अनुसार अपनी स्थिति को विवादित रूप से व्यक्त किया है, यह भी स्वीकार किया गया है **कि** 19 अक्टूबर, 1991 के निर्देश जिन्हें **4** फरवरी 1993, के **निर्देशों** द्वारा संशोधित **किया** गया है के **अनुसार** याचिकाकर्ता अपनी अपरिपक्व रिहाई के लिए विचार किए जाने का हकदार है क्योंकि उसने विचाराधीन अवधि में 10 साल की वास्तविक सजा और छूट सहित 14 साल की कुल सजा की अपेक्षित अवधि पूरी कर ली है।एकमात्र मैदान जिस पर प्रतिवादी ने वर्तमान याचिका का विरोध किया है जो आपराधिक विविध सं. 578-एम/199जी में इस न्यायालय की एकल पीठ का निर्णय है। (जय सिंह बनाम हरियाणा राज्य और अन्य), 9 अगस्त, 1996 को निर्णय लिया गया, जिसमें यह देखा गया है कि एक आजीवन दोषी को संहिता की खंड 433-ए की आवश्यकता के अनुसार पैरोल सहित 14 साल की वास्तविक सजा भुगतनी होगी।

(4) मैंने पक्षों की ओर से विद्वान वकील को सुना है और जय सिंह के मामले (ऊपर) में इस अदालत की एकल पीठ के फैसले पर भी विचार किया है।

(5) याचिकाकर्ता के अधिवक्ता, श्री पी. सी. चौधरी ने तर्क दिया है कि 19

अक्टूबर, 1991 के निर्देश, जैसा कि 4 फरवरी, 1993 के निर्देशों द्वारा संशोधित किया गया है, हरियाणा राज्य के राज्यपाल द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 161 द्वारा उन्हें प्रदान की गई अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए जारी किए गए हैं, जो किसी भी विधायी उपाय से प्रभावित नहीं हो सकते हैं, संहिता की खंड 433-ए खंड द्वारा भी नहीं।मारू राम बनाम भारत संघ में दिए गए शीर्ष न्यायालय के एक प्रसिद्ध फैसले पर विद्वान अधिवक्ता द्वारा रिलायंस किया गया है।

(6) श्री सैलदर सिंह हरियाणा के उप महाधिवक्ता ने प्रतिवादी की ओर से पेश होते हुए तर्क दिया है कि जय सिंह के मामले (उपरोक्त) में इस अदालत के फैसले को देखते हुए, याचिकाकर्ता की पूर्व-परिपक्व रिहाई के मामले पर आगे कार्रवाई नहीं की गई है, हालांकि यह पूरी तरह से हरियाणा राज्य द्वारा जारी निर्देशों द्वारा कवर किया गया है जैसा कि ऊपर कहा गया है।

(7) इस प्रकार, वर्तमान मामले में एकमात्र प्रश्न जिस पर विचार किया जाना शेष है, वह यह है कि क्या संहिता की धारा 433क के उपबंध भारत के संविधान के अनुच्छेद 161 द्वारा उन्हें प्रदत्त अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य के राज्यपाल द्वारा जारी किए गए दोषियों की समयपूर्व रिहाई के संबंध में दिए गए निर्देशों का अतिक्रमण करेंगे।

(8) जय सिंह के मामले (उपर्युक्त) में उपरोक्त प्रश्न पर विचार करते हुए इस न्यायालय की एकल पीठ ने कहाः के अंतर्गतः-

> "संक्षेप में, जो सामने आता है वह यह है कि अनुलेखन पी. 4 अनुभाग 433-ए सी आर पी सी में प्रतिबिंबित लीज़लेटिव इरादे को ओवरराइड नहीं कर सकता है। परिपक्व रिहाई के लिए याचिकाकर्ता के मामले पर विचार करते समय, प्रतिवादी इस बात को ध्यान में रखेंगे कि क्या वह वास्तविक रूप से 14 वर्षों तक जेल में रहा है (पैरोल सहित, पाठ्यक्रम छूट को छोड़कर)। पुनरावृत्ति की कीमत पर, यह देखा जाना चाहिए कि धारा 433-ए सी आर पी सी के प्रावधान। धारा 432 या 433 Cr.P.C के तहत या भारत के संविधान के अनुच्छेद 72 या 161 के तहत, जैसा भी मामला हो शक्तियों के प्रयोग से निरर्थक नहीं किया जा सकता है।

(9) सम्मान के साथ लेकिन अफसोस के साथ मैं असहमति की गुहार लगाता हूं।ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे विद्वान भाई का स्पष्ट ध्यान मार्टी राम के मामले (ऊपर) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून की ओर नहीं खींचा गया था। पैराग्राफ 59 और 60 में, न्यायमूर्ति ने कानून की व्याख्या इस प्रकार की हैः-

> **"यह** स्पष्ट **है कि** सतही रूप से देखे जाने पर, **दो** शक्तियाँ, एक संवैधानिक और दूसरी वैधानिक, **सह-व्यापक** हैं।लेकिन दो चीजें समान हो सकती हैं लेकिन समान नहीं।ठीक यही अंतर है।हम इस बात से सहमत नहीं हो सकते कि एन. ओ. सी. आर. जो कि संहिता का सृजन है, उसे संघ और राज्यों के सर्वोच्च अधिकारियों में संविधान द्वारा निहित एक उच्च विशेषाधिकार के बराबर माना जा सकता है।स्रोत अलग है, पदार्थ अलग है, शक्ति अलग है, हालाँकि धारा एक ही तल के साथ बह रही हो सकती है।हम दोनों शक्तियों को समान होने से दूर देखते हैं, और जाहिर है, संवैधानिक शक्ति 'अछूत' और अप्राप्य है और 'सरल विधायी प्रक्रियाओं'

के उतार-चढ़ाव को सहन नहीं कर सकती है।इसलिए।खंड 433-ए को अप्रत्यक्ष रूप से कला का उल्लंघन करने के रूप में अमान्य नहीं किया जा सकता है।72 और 161। संहिता क्या देती है, यह ले सकती है, और इसलिए धारा 432 और 433 (ए) पर प्रतिबंध संसद की विधायी शक्ति के भीतर है।

फिर भी, हमें अनुच्छेद 72 और 161 की संस्थागत स्थिति को याद रखना चाहिए और यह सामान्य आधार है कि खंड 433-ए राज्यपाल या राष्ट्रपति की क्षमा, शक्ति को प्रभावित नहीं करती है और न ही कर सकती है।इस तर्क के लिए आवश्यक आधार यह है कि राष्ट्रपति और राज्यपाल की खंड 433- ए के बावजूद उपरोक्त अनुच्छेदों के तहत परिवर्तन और छूट का प्रयोग जारी है।"

निर्णय के पैरा 65 में, अधिपतियों ने यह भी कहाः—

"यदि सरकार को संस्थापकों के साथ शांति बनाए रखनी है, तो उचित बात यह है कि विशेष परिस्थितियों या अचानक विकास से निपटने के लिए एक बड़ी अवशिष्ट शक्ति रखने के लिए क्षमा शक्ति के प्रयोग में अपने स्वयं के मार्गदर्शन के लिए नियम बनाए जाएं।यह भेदभाव के दोष को बाहर कर देगा जैसे कि दो व्यक्तियों को एक ही मामले में समान अपराध के लिए दोषी ठहराया गया है और सजा सुनाई गई है, लेकिन एक को रिहा कर दिया गया है और दूसरे को धर्म, जाति, रंग या राजनीतिक निष्ठा जैसे अप्रासंगिक कारणों से मना कर दिया गया है।

(10) कानून से जैसा कि मारू राम के मामले (ऊपर) में उनके प्रभुत्त्वों द्वारा प्रतिपादित और व्याख्या की गई है, यह स्पष्ट है कि संहिता की खंड 433-ए राज्यपाल या राष्ट्रपति की क्षमा करने की शक्ति को भी प्रभावित नहीं करती है और नहीं कर सकती है।परिणामतः धारा 433-ए के प्रावधानों के बावजूद, राष्ट्रपति और राज्यपाल भारत के संविधान के अनुच्छेद 72 और 161 के तहत परिवर्तन, छूट और रिहाई की शक्तियों का प्रयोग करना जारी रखते हैं।निर्णय के पैरा 65 में अधिपतियों द्वारा व्यक्त किया गया एकमात्र डर यह है कि इन शक्तियों का दुरुपयोग नहीं किया जा सकता है।भेदभाव की बुराई से बचने के लिए, सरकार को माफी की शक्ति का प्रयोग करते हुए अपने स्वयं के मार्गदर्शन के लिए नियम बनाने की आवश्यकता है।इसलिए, जय सिंह के मामले (उपरोक्त) में इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा की गई टिप्पणियां स्पष्ट कानून की दृष्टि से अच्छी नहीं हैं, जैसा कि शीर्ष न्यायालय द्वारा मारू राम के मामले में प्रतिपादित किया गया है, जो ऊपर पुनः प्रस्तुत किया गया है।

(11) हरियाणा के विद्वान उप महाधिवक्ता ने इस तथ्य पर विवाद नहीं किया है कि 19 अक्टूबर, 1991 के निर्देश, जैसा कि 4 फरवरी, 1993 के निर्देशों द्वारा संशोधित किया गया है, हरियाणा राज्य के राज्यपाल द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 161 द्वारा उन्हें प्रदत्त अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए जारी किए गए हैं।यह भी विवादित नहीं है कि इन निर्देशों के तहत, याचिकाकर्ता को विचाराधीन अवधि सहित 10 साल की वास्तविक सजा और छूट सहित कुल 14 साल की सजा भुगतनी होती है।यह भी विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ता ने इन निर्देशों में निर्धारित मानदंडों को पूरा किया है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि संहिता की खंड 433-ए के प्रावधान दोषियों की समय से पहले रिहाई के लिए निर्देश या दिशानिर्देश जारी करने में भारत के संविधान के अनुच्छेद 161 के तहत उन्हें प्रदान की गई राज्यपाल की शक्तियों को प्रभावित नहीं करेंगे।

(12) उपरोक्त चर्चा के परिणामस्वरूप, इस याचिका की अनुमति दी जाती है।प्रतिवादी को इस आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुत करने की तारीख से एक महीने की अवधि के भीतर, उपरोक्त टिप्पणियों के आलोक में, याचिकाकर्ता के पूर्व-परिपक्व रिहाई मामले पर विचार करने का निर्देश दिया जाता है।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा।

अजीतपाल सिंह
प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी
हिसार, हरियाणा

एस. सी के.